R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-21, अङ्क-4 अप्रेल 2021 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

# मङ्गलायतन

## अप्रेल का E - अंक

## शेर बना महावीर

भगवान महावीर का जीव दस भव पूर्व सिंहपर्याय में था। वह एक बार हिरण को पकड़ कर खा रहा था। तभी अमितकीर्ति और अमितप्रभ नामक दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज उसे सम्बोधने के लिये आकाशमार्ग से उतरे। मुनिराजों ने सिंह से कहा : "हे मृगराज ! तुम भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थङ्कर होनेवाले हो। तुम्हें यह हिंसक कार्य शोभा नहीं देता; अतः आज से अनन्त संसार में भटकानेवाले मिथ्यामार्ग को छोड़कर आत्महित के मार्ग में लगो।" मुनिराज के मृदुल सम्बोधन से सिंह के परिणामों में परिवर्तन हुआ; संसार के भयंङ्कर दुखों से उसका शरीर काँपने लगा। चैतन्य के अपूर्व पुरुषार्थपूर्वक उसे स्वस्वरूप का अनुभव हुआ। अहो ! सम्यक्त्वरूपी सिंह ने मिथ्यात्वरूपी हाथी को परास्त कर मोक्षसाधना का अनाहत शौर्य प्रगट किया।

**धन्य गुरु ! धन्य शिष्य !! धन्य निर्विकल्प दशा !!!**

# भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के 19वाँ साक्षात्कार शिविर की सचित्र झलकियाँ

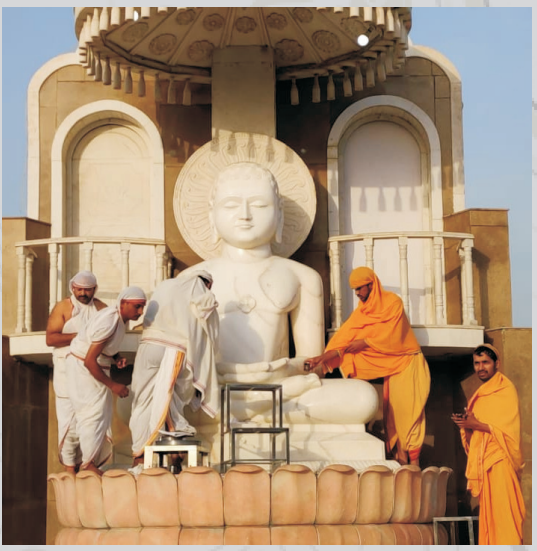

# मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ ( उ.प्र. ) का

**मासिक मुखपत्र**

वर्ष-21, अङ्क-4 ( वी.नि.सं. 2547; वि.सं. 2077 ) अप्रेल 2021


## स्वागत करते आज तुम्हारा....

**स्वागत करते आज तुम्हारा....**

**आओ आओ हे प्रिय मेहमान, मंगल स्वागत है ।।टेक ।।**

स्वागत करते हैं जिनवर का, परमपूज्य तीर्थंकर प्रभु का।
स्वागत है निर्मल परिणति में, मंगलमय चेतन ज्ञायक का ॥
प्रभु के चरणों में वंदन कर, श्रद्धा सुमनों को अर्पण कर।
तुम धन्य बनो मेहमान! मंगल स्वागत है ॥1 ॥

सारा भूमण्डल रोमांचित, कण-कण में छाई हरियाली।
तीर्थंकर के शुभागमन से, भरतक्षेत्र की छटा निराली ॥
हम तुम सब स्वागत करते हैं, चरणों में वंदन करते हैं।
तुम भले पधारे भाग्यवान मंगल स्वागत है ॥2 ॥

पंच प्रभु में भक्ति तुम्हारी, निशदिन हो भावना हमारी।
प्रभु के पंचकल्याण महोत्सव की कर ली हमने तैयारी ॥
शुद्धातम को लक्ष्य बनायें, रत्नत्रय निधियाँ प्रगटायें ॥
जन-जन का हो कल्याण, मंगल स्वागत है ॥3 ॥

*साभार : मंगल भक्ति सुमन*

**संस्थापक सम्पादक**
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
**मुख्य सलाहकार**
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
**सम्पादक**
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
**सह सम्पादक**
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
**सम्पादक मण्डल**
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
**सम्पादकीय सलाहकार**
पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
**मार्गदर्शन**
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

**इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-**

**श्रीमती सूर्याबहिन**

धर्मपत्नी

**महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'**

13 - एशले रोड, नार्थटन

हीथ, सरे - सी.आर. 7 6

एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

## क्या - कहाँ

| | |
|---|---|
| भगवान महावीर | 5 |
| वीतराग संत अपूर्व भेदज्ञान | 6 |
| निश्चयनय की प्रधानता | 8 |
| मोक्षार्थी जीव स्व-कार्य.... | 22 |
| आचार्यदेव परिचय शृंखला | 27 |
| हिंसा हार गयी | 31 |
| जिस प्रकार-उसी प्रकार | 32 |
| समाचार-दर्शन | 33 |

**शुल्क :**
**वार्षिक : 50.00 रुपये**
**एक प्रति : 04.00 रुपये**

# भगवान महावीर

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी.... आज के दिन कुंडलपुर में राजा सिद्धार्थ के घर त्रिशला माता की कोख से भगवान महावीर का जन्म हुआ। तीर्थंकर के जन्म का संदेश क्षणभर में सारे विश्व में फैल गया और तीनों लोक के जीवों ने क्षणभर को सुख का अनुभव किया... भगवान के जन्म के प्रभाव से जगत में प्रकाश फैल गया। भगवान आत्मा की दिव्य महिमा का चिंतवन करके अनेक जीवों के अंतर में ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ... धर्म की धारा वृद्धिगत होने लगी... इसलिये उनका नाम भी 'वर्द्धमान' पड़ा। वीर, सन्मति, महावीर, अतिवीर भी उनके नाम हैं।

प्रभु वर्द्धमान आराधक तो थे ही; सिंह के भव से लेकर दस-दस भव तक पुष्ट की हुई आत्मसाधना उन्हें इस भव में पूर्ण करना थी। दर्शन और ज्ञान-आराधना तो जन्म से ही साथ लाये थे, उस आराधना में वृद्धि करते-करते तीस वर्ष की उम्र में संसार से विरक्त होकर चारित्र अंगीकार किया और मोह के बंधन तोड़कर निर्मोही प्रभु बने। आत्मसाधना के काल में अनेक उपसर्ग-परीषह आये, देवों ने भी डिगाने का प्रयत्न किया, परंतु वे वीर थे... स्वरूप की साधना से चलायमान नहीं हुए सो नहीं हुए... साधकभाव की धारा को वर्द्धमान करके उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और सर्वत्र जिनमहिमा फैल गई। राजगृही में विपुलाचल पर जब उनकी दिव्यध्वनि की सरिता प्रवाहित हुई, तब अनेक जीव उसमें अवगाहन कर आत्मिक वीरता को प्राप्त हुए और वीरमार्ग पर विचरे।—इसप्रकार स्व-पर में धर्मवृद्धि करके वर्द्धमान ने अपना नाम सार्थक किया... जीवन सफल बनाया।

आज भी उन महावीरस्वामी के पदचिह्नों पर चलकर अनेक जीव वीतराग मार्ग पर विचर रहे हैं। हम सब भी उसी मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करें।

—जय महावीर!

*आत्मधर्म हिन्दी, वर्ष 27, अंक 11-12*

# वीतराग संत अपूर्व भेदज्ञान कराते हैं, वह भेदज्ञान करके आत्मा आनंदित होता है

**[ फाल्गुन कृष्णा 12, सोनगढ़ : समयसार गाथा 22 से 25 ]**

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी द्वारा दिया गया प्रवचन)

जीव का स्वरूप पुद्गल से भिन्न चेतनारूप है; ऐसा स्वरूप बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तू तो चैतन्यस्वरूप है, तू कहीं पुद्गलस्वरूप नहीं है। अंतर में विचार करके देख तो तुझे अपनी चेतनता का और जड़-पुद्गल से अत्यंत भिन्नता का अनुभव होगा।

अरे, कहाँ तू चैतन्य भगवान और कहाँ वे अचेतन-जड़? दोनों को सर्वथा भिन्नता है। सर्वज्ञ भगवान ने चेतनमय जीव देखा है, पुद्गल तो जड़रूप है। चेतनतत्त्व पुद्गलरूप कैसे होगा? राग भी चेतनता रहित है। चेतनतत्त्व कभी चेतनता छोड़कर रागमय या शरीरमय नहीं होता और शरीर या राग कभी चेतनरूप नहीं होते; दोनों में बिल्कुल भिन्नता है। जिसप्रकार प्रवाहीपन और खारापन तो पानी में एकसाथ रह सकते हैं, उसमें विरोध नहीं है; उसीप्रकार कहीं जीव में चेतनता और अचेतनता को अविरोधपना नहीं है; जीव में जिसप्रकार चेतनपना तन्मयरूप से सदा विद्यमान है, उसीप्रकार कहीं रागादिपना जीव के साथ तन्मय नहीं वर्तता, वह तो भिन्न वर्तता है। सर्वज्ञदेव का कहा हुआ ऐसा भेदज्ञान करके हे जीव! तू प्रसन्न हो... आनंदित हो!

अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व तो इतना सरस, रागरहित शोभायमान है, वह मेरे गुरु के प्रताप से मुझे अनुभव में आया।—इसप्रकार स्वतत्त्व को देखकर हे जीव! तू आनंदित हो! जहाँ आनंदमय तत्त्व स्वयं अपने अनुभव में आया, वहाँ अब संदेह कैसा? खेद कैसा?—संदेह और खेद छोड़कर ऐसे स्वतत्त्व को आनंदसहित अनुभव में ले। अनादिकाल से भूलकर भव में भटका, तथापि मेरा तत्त्व बिगड़ नहीं गया है, चेतनता को छोड़कर जड़रूप-रागरूप नहीं हुआ है; चारों ओर से, सर्व परभावों से मेरा तत्त्व पृथक् का पृथक्

चैतन्यमय है।—ऐसा अंतर में देखते ही अपने को परम अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। ऐसा स्वाद लेकर हे जीव! तू प्रसन्न हो... उज्ज्वल हो... और ऐसे उपयोगस्वरूप आत्मा को अनुभव में ले।

अहा! सर्वप्रकार से तू प्रसन्न हो... किसी प्रकार दु:खी न हो! अरे, चैतन्य में कहीं दु:ख होगा? संतुष्ट होकर तू आनंदमय चैतन्यतत्त्व को देख! वर्तमान में भी तू ज्यों का त्यों है। अंतर में देखते ही तुझे महा आनंद होगा। ऐसे तत्त्व को देखकर धर्मी कहता है कि अब परभाव में मैं नहीं जाऊँगा... नहीं जाऊँगा। चेतनरूप ही मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा के सिंहनाद से धर्मी कहता है कि अब हमारे भव कैसे और दु:ख कैसा? जिसप्रकार सूर्य के प्रकाश में अंधकार नहीं है, उसीप्रकार मेरे चैतन्यसूर्य के प्रकाश में रागादि परभावों का अंधेरा नहीं है—नहीं है—नहीं है।

अहा! चैतन्य की ऐसी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होगा! ऐसे अपने चैतन्य को लक्ष में लेकर तू प्रसन्न हो जा! जहाँ आत्मा का लक्ष हुआ, वहाँ धर्मी परम आनंद के वेदन सहित नि:शंक हो जाता है कि बस, सर्वज्ञदेव द्वारा देखे गये आत्मा का अनुभव हमने भी कर लिया है... जैसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, वैसे ही अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा का हम अनुभव कर रहे हैं।

अहा! प्रमोद सहित एकाग्रतापूर्वक अपने चैतन्य की बात तू सुन तो सही! आत्मा का ऐसा सरसस्वरूप सुनकर अंतर में असंख्यप्रदेश प्रमोद से उल्लसित हो जाते हैं... मुमुक्षु जीव अपने तत्त्व को देखकर महा प्रसन्न होता है। अपनी वस्तु अति गंभीर एवं अत्यंत महान है, परंतु वह ऐसी नहीं है कि उसमें ज्ञान द्वारा प्रविष्ट न हुआ जा सके! ज्ञान की उज्ज्वलता द्वारा अंतर में ऐसे चैतन्यतत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। आत्मा अपने चैतन्यलक्षण को कभी बदलता नहीं है। लाख प्रतिकूलताओं के बीच भी ज्ञानी अपने चैतन्यलक्षण को नहीं छोड़ते अथवा चैतन्यलक्षणरूप जो स्वतत्त्व है, उसका कभी लक्ष नहीं छोड़ते। अहा, ऐसे चैतन्यलक्षणवान स्वतत्त्व को तू आनंद से अनुभव में ले।

शेष पृष्ठ 21 पर

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
धारावाही प्रवचन

# निश्चयनय की प्रधानता

अब पाँचवें कलश की टीकारुप छठवाँ काव्य इसप्रकार है–

**निश्चयनय की प्रधानता**

**ज्यौं नर कोउ गिरै गिरिसौं तिहि,**
**सोइ हितू जो गहै दिढ़बाहीं।**
**त्यौं बुधकौं विवहार भलौ,**
**तबलौं जबलौं शिव प्रापति नाहीं।।**
**यद्यपि यौं परवान तथापि,**
**सधै परमारथ चेतनमाहीं।**
**जीव अव्यापक है परसौं,**
**विवहारसौं तौ परकी परछाहीं।।6।।**

**अर्थः–** जैसे कोई मनुष्य पहाड़ परसे फिसल पड़े और कोई हितकारी बनकर उसकी भुजा मजबूती से पकड़ लेवे उसी प्रकार ज्ञानियों को जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हुआ है तब तक व्यवहार का अवलम्ब है, यद्यपि यह बात सत्य है तो भी निश्चयनय चैतन्य को सिद्ध करता है तथा जीव को पर से भिन्न दर्शाता है और व्यवहारनय तो जीव को पर के आश्रित करता है।

**भावार्थः–** यद्यपि चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक व्यवहार का ही अवलम्बन है, परन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा निश्चयनय उपादेय है, क्योंकि उससे पदार्थ का असली स्वरूप जाना जाता है और व्यवहारनय अभूतार्थ होने से परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।।6।।

काव्य – 6 पर प्रवचन

कवि बहुत होशियार है, आध्यात्मिक कवि है न! जैसे कोई पर्वत पर से फिसल जाये और कोई हितकारी बनकर उसका हाथ मजबूती से पकड़ ले; उसीप्रकार ज्ञानियों को जहाँ तक मोक्ष प्राप्त नहीं होता, वहाँ तक व्यवहारनय

का अवलम्बन है। मोक्ष होने तक व्यवहारनय की दशा उदय की, योग के कंपन की होती है, इतनी ही बात है। व्यवहार भला है या आश्रय करने जैसा है- ऐसा नहीं है।

ज्ञानी धर्मात्मा को अपने शुद्ध स्वरूप की दृष्टि में ध्येय और आलम्बन तो शुद्धवस्तु का है; परन्तु जहाँ तक पूर्ण मोक्ष न हो, वहाँ तक उनकी दशा में भेदरूप अवस्था है। वह 'है' इसप्रकार जानने योग्य है, नहीं हैं- ऐसा नहीं। शिवप्राप्ति अर्थात् मोक्ष-आत्मा की पूर्णदशा की प्राप्ति न हो, वहाँ तक अधूरी दशा है; उसे जानना चाहिए।

अहो! इसने अनन्तकाल से चैतन्य का माल जड़ा नहीं है, बाहर की माथापच्ची में पड़ा है; उसका अन्त नहीं आया अर्थात् संसार से मुक्त होने का अवसर नहीं आया, परिभ्रमण का ही अवसर रहा है।

आत्मा सत् चिदानन्द आनन्दस्वरूप है। उसकी दृष्टि करने का नाम ही धर्म है। जहाँ तक इस धर्म की पूर्णतारूप मोक्ष न हो, वहाँ तक अधूरी दशा है- ऐसा जानने का नाम व्यवहार है।

यह जन्म-जरा-मरण के मार्ग से मुक्त होने की बात है। जैसे पहाड़ पर से गिरता मनुष्य हो, उसका हाथ कोई मजबूती से पकड़ ले तो वह उसके लिए निमित्तरूप अवलम्बन कहलाता है। अथवा सीढ़ी पर चढ़ता मनुष्य अपने पुरुषार्थ से चढ़ता है, परन्तु उसमें लकड़ी निमित्तरूप होती है, वैसे ही धर्मी को पूर्णता न हो, वहाँ तक उसकी दशा में भेदरूप पर्याय है, उसे जानने का नाम व्यवहार कहा जाता है।

'यद्यपि यौं परवान' - भेदरूप पर्याय को जानने का ऐसा व्यवहार है, तथापि परमार्थ का साधन तो अभेद आत्मा की दृष्टि और उसमें एकाग्रता ही है। व्यवहार वह कोई साधन नहीं; परन्तु.. इस परिभ्रमण के रास्ते की आड़ में इसको यह नक्की करने का समय ही कहाँ है। पाँच-पच्चीस लाख की आय होती हो तो उसी में मस्त हो जाता है। सवेरे से सायंकाल तक व्यापार-धंधे में बैठा रहे और इसी से मुझे लाभ होता है- ऐसा मानता रहे, वह मूर्ख है। खाना

खाते समय भी हाथ में टेलीफोन होता है।

एक बार हम पालेज से मुम्बई माल लेने गये थे। वहाँ आड़तिया के यहाँ साथ जीमने बैठे और फोन आया तो खाते-खाते फोन लिया। उससे कहा भाई! जिस खाने के लिए रुलते हो, उसमें भी शान्ति नहीं! सुख से भोजन भी नहीं कर सकते! भोजन तो शान्ति से करो। अरे! जब मरण का टेलीफोन आयेगा, तब तुम्हारा क्या होगा?

तुझे सुख और आनन्द चाहिए है न! अखण्ड आनन्द तो तेरे आत्मा में है। उस आनन्द की प्रतीति और अनुभव होने से जन्म-मरण के अभाव के भणकार आते हैं। भले ही उस समय गृहस्थ अवस्था हो, परन्तु वह भणकार बढ़ते-बढ़ते पूर्ण निर्मलदशा - मोक्ष न हो, वहाँ तक अपूर्णदशा है, उसे जानने का नाम व्यवहार है; परन्तु इस व्यवहार से परमार्थ नहीं सधता। 'सधै परमारथ चेतनमाहीं। ज्ञान का पुंज जो चेतन स्वभाव, उसका आश्रय लेकर आत्मा की शान्ति का साधनपना होता है, अन्य कोई शान्ति का साधन नहीं है।

व्यवहार होता है, वह हमको प्रमाण है; परन्तु उससे परमार्थ नहीं सध सकता। अधूरी अवस्था और राग-रूप पर्याय व्यवहार है, उससे परमार्थ नहीं सधता। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वामी है, उसमें दृष्टि देने से परमार्थ मार्ग सध सकता है।

भावार्थ में कहा है कि यद्यपि चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक व्यवहार होता है; परन्तु उपादेय तो निश्चयनय ही है; क्योंकि उससे पदार्थ का असली स्वरूप जानने में आता है और व्यवहारनय अभूतार्थ होने से परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।

आत्मा की खान में अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, शान्ति आदि भरी है- ऐसे स्वभाव के अन्तर साधन से आत्मा का परमार्थ धर्म सध सकता है। व्यवहार भले ही हो, उससे इन्कार नहीं; परन्तु उस व्यवहार के आश्रय से परमार्थ धर्म नहीं सध सकता। 'सधै परमारथ चेतन माहीं'- चैतन्य के आश्रय से ही चैतन्य की साधना होती है। व्यवहार, व्यवहार के

स्थान में है, वह जानने लायक है; परन्तु निश्चय साधन तो अन्तर आत्मा में जाना- वही है। अन्तर आत्मा में एकाग्र होना, वह साधन है।

'जीव अव्यापक है पर सौं'- वस्तुत: तो आत्मा व्यवहार से व्यापक ही नहीं (राग में आत्मा नहीं व्यापता)। व्यवहारनय पराश्रित है और निश्चय स्वाश्रित है। निश्चय चैतन्य को सिद्ध करता है तथा जीव को पर से भिन्न दर्शाता है और व्यवहारनय तो जीव को पराश्रित करता है, अत: व्यवहार का साधन, वह कोई मुक्ति का कारण नहीं है। सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय करना ही मुक्ति का कारण है।

यहाँ तो आत्मा व्यवहार से अव्यापक है- यह सिद्ध करते हैं। वस्तुत: धर्मी का आत्मा पर से व्यापक है ही नहीं। यह बात अज्ञानी को कठिन पड़ती है; परन्तु जैसे संसार में तो कठिन ऐसा चक्रवर्ती ब्याज भी निकालता है न! तो आत्मा में राग किस प्रकार है, वह कैसे मिटे? उसके प्रयत्न में क्यों नहीं चढ़ता? आत्मा राग में व्यापक नहीं अर्थात् क्या? कि राग आत्मा के स्वभाव से भिन्न है। दया, दान, भक्ति का राग भले ही हो; परन्तु आत्मा उससे भिन्न है - अव्यापक है। अत: शुद्ध चैतन्यवस्तु की दृष्टि होते धर्मी जीव के आत्मा में राग नहीं आता, राग नहीं पसरता और राग में आत्मा नहीं पसरता।

'विवहारसौं तौ पर की परछाहीं'- भेद और विकल्प वह तो पर की परछाई है, स्व की पर्याय या स्व की छाया नहीं। पद्य में भी कवि ने कितना घोंटा है। स्वयं गृहस्थाश्रम में स्त्री-पुत्रादि परिवार में थे, फिर भी कहते हैं कि उनमें हम नहीं। भगवान की भक्ति आदि का विकल्प आता है, परन्तु उसमें हम नहीं और उसमें व्यापक नहीं अर्थात् हम उस व्यवहार में फैले हुए नहीं है।

यह शरीर तो जड़-मिट्टी-धूल है। मिट्टी से (पुद्गल से) निर्मित है और मिट्टी में मिल जायेगा। आठ प्रकार के कर्म भी जड़-मिट्टी हैं और पुण्य-पाप का विकल्प होता है, वह विकार है। यह है- ऐसा जानना सही है, परन्तु धर्मी उसमें व्यापते नहीं। धर्मी राग के भाव से भी विरक्त रहते हैं। धर्मी तो मात्र अपनी वीतरागी पर्याय में व्यापक हैं, उसमें अभेद होते हैं, राग में अभेद नहीं होते।

"पराश्रित वह व्यवहार, स्वाश्रित वह निश्चय," स्वाश्रित निश्चय को प्राप्त ऐसे मुनि को भी पराश्रित ऐसा राग होता है; और राग है- इतना जानने योग्य है, परन्तु उससे आगे बढ़कर वह रागभाव लाभ-दायक है या उसके आश्रय से धर्म बढ़ता है, ऐसा नहीं है।

जैसी रुचि पर में है यदि वैसी ही रुचि स्व में करे तो उसको स्वरूपानुभव में देरी नहीं लगे। तुलसीदासजी ने भी लिखा है न-

जैसी प्रीति हराम से, वैसी हरि से होय।
चला जाये बैकुंठ में, पला न पकड़े कोय।

पर में तो इसकी रुचि का पार नहीं है। एक लाख रुपये मिले वहाँ तो लापसी (हलुवा) राँधता है। भाई! यह लाख तो राख है। इसको तो ऐसा होता है कि ओहो! आज तो कुछ पाया है। फोन आया है ....भाई! तुझे तेरी टोन नहीं आती और यह विपरीत टोन आती है। तेरा स्वभाव क्या है? उसकी टोन तो तुझे सूझती नहीं और यह पर की टोन तुझे सूझती है। ये सब परिभ्रमण के रास्ते हैं। एक दिन में दो लाख की कमाई हो तो भी क्या? उसमें से एक पाई भी साथ जानेवाली है? साथ तो कुछ नहीं जाता, परन्तु उसके प्रेम में तू दुर्गति में चला जायेगा- यह बात निश्चित है।

जिसने अपनी जाति जानी नहीं। मैं कौन हूँ? उसकी कीमत की नहीं और राग तथा पर की कीमत टाली नहीं, वह चौरासी के अवतार में भ्रमण करने चला जाता है। जिसको स्व की कीमत होती है, उसको राग की कीमत नहीं रहती। वह स्वक्षेत्र में चला जाता है।

इसप्रकार छठवें काव्य का अर्थ हुआ। अब भावार्थ लेते हैं-

भावार्थ:- यद्यपि चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक व्यवहार का अवलम्बन है, परन्तु व्यवहारनय की अपेक्षा से निश्चयनय उपादेय है; क्योंकि उससे पदार्थ का असली स्वरूप ज्ञात होता है और व्यवहारनय अभूतार्थ होने से परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द है। उसका अवलम्बन लेने से, अर्थात्

आत्मा जैसा है, वैसी दृष्टि होने से पर्याय में शान्ति और आनन्द आता है। वैसी दशा को चौथा गुणस्थान कहा जाता है, वहीं से निश्चय और व्यवहार प्रारम्भ होते हैं। जहाँ तक भगवान आत्मा शुद्ध है- ऐसी दृष्टि ही नहीं और राग से लाभ मानता है, पुण्य से धर्म मानता है; वह तो मूढ़-मिथ्यादृष्टि है, उसके तो धर्म का प्रारम्भ ही नहीं है। वह तो पहले गुणस्थान में है। चौथे गुणस्थान से ही धर्म का प्रारम्भ होता है। जैसे ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे ही सिद्ध होने के लिए यह चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक की सीढ़ियाँ है। चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक निश्चय-व्यवहार होते हैं।

देखो सेठ! सम्यग्दर्शन में शान्ति होती है- ऐसा कहा है; पैसे से शान्ति होती है- ऐसा नहीं कहा। पैसा तो धूल है, उस धूल से तो शरीर का रोग भी नहीं मिटता। पैसा हो तो डॉक्टर को बुलाकर दवा हो.. पैसा बिना कहाँ से हो ?परन्तु डॉक्टर आकर दवा कर जाये फिर भी मनुष्य मरते नहीं देखे क्या ?अरे! डॉक्टर स्वयं भी मर जाता है; अतः पैसे से रोग या मरण नहीं रुकता। पैसे से शान्ति नहीं होती। शरीर, स्त्री, पुत्रादि परिवार से भी शान्ति बिलकुल नहीं होती।

यहाँ तो कहते हैं कि चौथे गुणस्थान से चौदहवें तक पर्याय में व्यवहार होता है। अर्थात् भले ही विकल्प न हो, परन्तु भेद है, योग का कंपन है। अरे! कंपन मिट जाये तो भी आंशिक अशुद्धता है, वह व्यवहार है। ऐसा व्यवहार होता ही है; परन्तु वह आदरणीय नहीं, उपादेय नहीं, शरण नहीं। ज्ञानी को निश्चय और व्यवहार दोनों होते हैं, जबकि अज्ञानी को निश्चय प्रकट हुआ नहीं तो उसके व्यवहार भी नहीं है। भेद तो उसके भी होते हैं, परन्तु अभेद अखण्ड आत्मा के भान बिना उस भेद को भेदरूप नहीं जानता; अतः उसको व्यवहार भी नहीं है।

ज्ञानी के व्यवहार है, भेद है; परन्तु आश्रय करने की अपेक्षा से वे उपादेय नहीं हैं। उपादेय तो एक पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा ही आदरणीय है। व्यवहार है अवश्य; परन्तु उपादेय नहीं और निश्चय है एवं वह उपादेय भी है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, एकरूप, ध्रुव..ध्रुव आनन्दघन है; वही आत्मा का असली स्वरूप है। निश्चय द्वारा ऐसा असली स्वरूप जानने में आता है। व्यवहार से आत्मा का ऐसा असली स्वरूप ज्ञात नहीं होता। व्यवहार द्वारा तो आत्मा की रागवाली, कंपनवाली या उदयवाली पर्याय ज्ञात होती है, किन्तु आत्मा का असली स्वरूप ज्ञात नहीं होता; अत: व्यवहार झूठा है। यह अन्दर का पर्याय का व्यवहार भी झूठा है। वहाँ बाहर के व्यवहार की तो बात ही कहाँ रही ?व्यापार आदि के व्यवहार की तो यहाँ बात ही नहीं है।

आत्मा के असली निश्चय स्वरूप के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन होता है। उसकी पर्याय में रागादि का व्यवहार होता है; वह जानने लायक है, आदर के लायक नहीं।

श्रोता:- बहुत ऊँची बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री:-प्रथम में प्रथम बात ही यह है, अन्य सब तो बिना एक के बिन्दियाँ हैं। वस्तु का वास्तविक स्वरूप कैसा है ?उसकी ही जिसे खबर न हो, उसको धर्म कहाँ से होगा ?जिसको धर्म करना हो, उसको राग और एक समय की पर्याय से रहित सिद्ध समान निज आत्मा ही उपादेय है।

निज शुद्धात्मा के असली स्वरूप की भावनावाले को भेदरूप व्यवहार वर्तता है, परन्तु वह आश्रय करने लायक या उपादेय नहीं है; क्योंकि व्यवहार को उपादेय करने से वस्तु का कायमी-असली शुद्धस्वरूप श्रद्धा-ज्ञान में नहीं आता। व्यवहार का विषय एक समय की पर्याय और राग है, वह स्थायी रहनेवाली वस्तु नहीं; अत: वह परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।

लोगों को बहुत कड़क लगे- ऐसी बात है। लोग तो पैसे के पीछे मजदूरी करके मर जाते हैं। यह पैसेवाले तो सबसे बड़े मजदूर हैं, क्योंकि सामान्य मजदूर तो दिन भर में आठ घण्टे ही काम करता है और ये तो चौबीस घण्टे काम करते हैं। सबेरे आठ बजे से रात्रि दस बजे तक तो दुकान पर चले जाते हैं और फिर घर में फोन से मजदूरी तो चालू ही है; अत: ये पैसेवाले बड़े मजदूर हैं।

अरिहन्त परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि तेरा नित्य ज्ञानानन्दस्वरूप जो ध्रुव है, वह एक ही तुझे आदरणीय है। पर्याय में राग और भेद है, वह नहीं है ऐसा नहीं; परन्तु वे हैं- ऐसा जानने योग्य है, आदरने योग्य नहीं।

लोगों को ऐसा लगता है कि अरे! हम खाते-पीते और मौज करते हैं, वहाँ तुम- आत्मा पर का काम नहीं करता और पर को नहीं भोगता- यह बात कहाँ से लाये ?

भाई! वस्तुस्थिति ही ऐसी है कि आत्मा आँख की एक पलक को भी हिला नहीं सकता। आत्मा तो अरूपी है। अरूपी पदार्थ रूपी को किस प्रकार करे ?आत्मा पर को छूता ही नहीं तो पर के काम तो किस प्रकार करे ?मात्र कल्पना करता है कि मैं पर के काम करता हूँ; पर का कार्य तो पर से होता है, जीव उसका कर्त्ता नहीं है।

तुझे सुखी होना हो, दु:ख को मिटाना हो तो अनन्त आनन्द का धाम तेरा शुद्धस्वरूप है, उस पर दृष्टि लगा। इसके अलावा सुखी होने का अन्य कोई उपाय नहीं है। तो शिष्य को प्रश्न होता है कि दृष्टि में तो एक आत्मा ही आदरणीय होता है यह सत्य है, परन्तु साथ में वर्तमान में कुछ व्यवहार है या नहीं ?उससे आचार्य देव कहते है कि भाई! हाँ, व्यवहार होता है। समकिती को भक्ति आदि के शुभभावरूप व्यवहार होता है और एकसमय की पर्याय भी वास्तव में व्यवहार है। यह व्यवहार है- ऐसे मात्र जानने योग्य है, व्यवहार आदरने योग्य नहीं है। परमार्थ में प्रयोजनभूत नहीं है।

**सम्यग्दर्शन का स्वरूप**

**शुद्धनय निहचै अकेलौ आपु चिदानंद,**
**अपनैंही गुन परजायकौ गहतु है।**
**पूरन विग्यानघन सो है विवहारमाहिं,**
**नव तत्वरूपी पंच दर्वमैं रहतु है।।**
**पंच दर्व नव तत्त्व न्यारे जीव न्यारौ लखै,**
**सम्यकदरस यहै और न गहतु है।**

**सम्यकदरस जोई आतम सरूप सोई,**
**मेरे घट प्रगटो बनारसी कहतु है ।।17।।**

**अर्थः-** शुद्ध निश्चयनय से चिदानन्द अकेला ही है और अपने गुण-पर्यायों में परिणमन करता है। व्यवहारनय में वह पूर्णज्ञान का पिण्ड वा पाँच द्रव्ये नव तत्त्व में एकसा हो रहा है। पाँच द्रव्य और नव तत्त्वों से चेतियता चेतन निराला है, ऐसा श्रद्धान करना और इसके सिवाय अन्य भांति श्रद्धान नहीं करना सो सम्यक्दर्शन है; और सम्यक्दर्शन ही आत्मा का स्वरूप है। पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि वह सम्यक्दर्शन अर्थात् आत्मा का स्वरूप मेरे हृदय में प्रगट होवे ।।7।।

## काव्य - 7 पर प्रवचन

अब समयसार के छठवें श्लोक के पद्यानुवाद रूप सातवाँ काव्य कहते हैं। समयसार के कलशों के कविवर बनारसीदासजी ने पद्य लिखे हैं। इस काव्य में सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताया है।

शुद्ध निश्चयनय से चिदानन्द इतना ही है। शुद्ध निश्चयनय अर्थात् सत्यदृष्टि से देखें तो ज्ञानानन्द भगवान आत्मा इतना ही है। शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप से भिन्न आत्मा इतना ही है। आत्मा समय-समय की पर्याय से भी भिन्न है। शुद्धज्ञान से देखें तो चिदानन्द भगवान आत्मा अनादि-अनन्त ध्रुवरूप विराजता है, अभी भी ऐसे ही है। मान्यता में मान लिया है कि मैं मनुष्य हूँ, रागी-द्वेषी हूँ -यह भ्रम है, अज्ञान है-मूर्ख की मूर्खता है।

जिसको पैसे की रुचि होती है, वह पैसेवाले को बड़ा मानता है। बाकी यहाँ तो गरीब हो या पैसेवाला हो, जिसकी मान्यता ही विपरीत है; वे सब मूर्ख हैं, मूर्खाई में बड़े हैं। यहाँ तो जो गुण में बड़े हैं- ऐसे अरिहन्त और सिद्धभगवान, वे 'बड़े' हैं।

निश्चय माने सच्ची दृष्टि से देखें तो चिदानन्द भगवान आत्मा अनादि-अनन्त ज्ञानानन्द से भरा है, वह एक ही संतों को आदरणीय है। ज्ञानी अथवा अज्ञानी प्रत्येक का आत्मा निश्चय से सदा शुद्ध ही है, परन्तु

अज्ञानी स्वयं अपनी भूल से ही उसे चूक गया है अतः उसे दिखता नहीं है। पर को देखने गया, वहाँ अपने को देखना भूल गया। यह पैसा--यह मकान--यह सब मेरे- ऐसे पर को देखने गया, वहाँ इसकी दृष्टि में से चैतन्य खो गया। जिसकी दृष्टि में पुण्य-पाप और उसके फल की अधिकता दिखती है, उसकी दृष्टि में से चिदानन्द भगवान आत्मा खो जाता है।

त्रिकाल चिदानंद स्वभाव की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

'अपनैहि गुन परजाय कौ गहतु है'- भगवान आत्मा समझ का पिण्ड है, वह अपने गुण-पर्याय को ग्रहण करता है। वह राग का,पर का अथवा विकल्प का ग्रहण नही करता। राग, विकल्प और विकाररूप से परिणमे, वह आत्मा नहीं है। जो निर्मल गुणरूप से परिणमता है, वही आत्मा है, वही सच्चिदानन्द है। आत्मा को सच्चिदानन्द तो बहुत कहते हैं, परन्तु उसके अर्थ को यथार्थ नहीं जानते।

मैं पर का कार्य कर दूँ-- व्यापार में गहरी रुचि लेकर कमाई बढ़ा दूँ-- खूब पैसा पैदा कर दूँ- ऐसा माननेवाला मूढ़ पर का स्वामी होकर अनात्मा होता है। इसप्रकार मैं पुण्य-पापरूप परिणमता हूँ- ऐसा माननेवाला भी अनात्मा है, आत्मा नहीं।

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान का धाम है। वह स्वयं आनन्द और ज्ञानरूप परिणमित हो, उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा पररूप परिणमता तो नहीं, परन्तु पर का कर्त्ता भी नहीं है और दया, दान, व्रत, भक्ति के शुभराग और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि अशुभरागरूप-विकार रूप भी आत्मा नहीं परिणमता। साक्षात् इन भावों रूप परिणमे, उसे आत्मा नहीं कहते; वह (तो) अनात्मा है।

यह तो परमात्मा तीर्थंकर देव का कहा हुआ मार्ग है। लोगों को यह मार्ग मिला नहीं, अतः यह बात बहुत ऊँची है- ऐसा लगता है; परन्तु यह बात ऊँची नहीं है। यह तो पहले में पहली बात है। सुखी होने का पंथ और विधि तो एकमात्र यही है। अन्य सब परिभ्रमण का पंथ है। उसमें अज्ञानी

उत्साहपूर्वक दौड़ रहे हैं।

चिदानन्द भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान और आनन्द का कन्द है और ज्ञान व आनन्द का परिणमन होता है वह उसकी पर्याय है। अशुद्ध परिणमन होता है, वह आत्मा का परिणमन नहीं है। 'आत्मा', वह वस्तु-द्रव्य है, 'चिदानन्द', वह उसका गुण है और ज्ञान-आनन्दरूप से परिणमे, वह उसकी पर्याय है। इसप्रकार द्रव्य, गुण, पर्याय- तीनों शुद्ध हैं। सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्रतीति होने पर द्रव्य, गुण, पर्याय-तीनो शुद्ध है। जहाँ अशुद्ध परिणमन भी आत्मा का नहीं; वहाँ स्त्री, पुत्रादि तो कहीं दूर ही रह गये। उन्हें अपना माननेवाला तो जड़ का स्वामी होता है।

ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा को जानकर उस रूप परिणमना, वह आत्मा का रूप है। शुद्ध चिदानन्दघन, वह चिदानन्द स्वभाववाला स्वभाववान है- ऐसी दृष्टि हो; वहाँ पर्याय में श्रद्धापने होना, ज्ञानपने होना, चारित्रपने होना, आनन्दपने होना, शुद्धतापने होना- वह गुणों का परिणमन है। रागादि हों, विकल्प हों, वह उसका परिणमन नहीं।

त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव गणधर और इन्द्रों की हाजिरी में, अरबों देवों की उपस्थिति में ऐसा वस्तुस्वरूप बतलाते थे, उसे ही यहाँ कुन्दकुन्द्राचार्य और अमृतचन्दाचार्य फरमाते हैं और उसी का अर्थ बनारसीदासजी पद्य में कहते हैं और उन्हीं एक-एक शब्दों का अर्थ यहाँ हो रहा है।

'शुद्धनय निहचै अकैली आपु चिदानन्द, अपने ही गुन परजाय को गहतु है'- व्यवहार रत्नत्रय का विकल्प, वह अपने गुण की पर्याय नहीं- ऐसा कहते हैं। देव-शास्त्र-गुरु को मानने का विकल्प, वह मेरी पर्याय नहीं। क्यों ?शुद्ध वस्तु की पर्याय शुद्ध होगी या अशुद्ध होगी ?चैतन्य की खान में अशुद्धता नहीं भरी है तो अशुद्धता आवे कहाँ से ?आत्मा तो पवित्रता का पिण्ड है, अत: पवित्र निर्दोष दशा हो वही उसकी पर्याय है।

इसका अर्थ यह हुआ कि जो अपने द्रव्य का आदर करता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते ही हैं- ऐसा उसका स्वभाव है। द्रव्य की दृष्टि

करे और निर्मलता न प्रकटे- ऐसा कैसे हो सकता है? सम्यग्दर्शन -ज्ञान-आनन्द और शान्तिरूप परिणमना- यही आत्मा का स्वभाव है।

नये मनुष्य को ऐसा लगे कि यह क्या कहते हैं? भगवान के दर्शन करना, नवकार मंत्र पढ़ना, भक्ति करना, उसको धर्म कहते हैं। "शिवपद हमको दीजे रे महाराज शिवपद हमको दीजे"- ऐसी भक्ति करे तो शिवपद मिले; परन्तु भाई! क्या तेरा शिवपद भगवान के पास है? तेरा शिवपद तो तेरे पास है, उसकी दृष्टि कर! उस रूप परिणमना, वह स्वभाव ही है; अतः अवश्य ही परिणमन होगा। मिथ्यात्व और क्रोध, मानादिरूप परिणमने का तो जीव का स्वभाव ही नहीं था, फिर भी उठाईगीर होकर ऐसा अज्ञान खड़ा किया है; परन्तु अपने श्रद्धा-ज्ञान-आनन्दरूप परिणमने का तो जीव का स्वभाव ही है।

मनुष्यभव में यह कर लेने जैसा है। भाई! देखो न, छोटी-छोटी उम्र के मनुष्य चले जाते हैं। अरे! जो करने योग्य है वह करे नहीं और नहीं करने योग्य में जिन्दगी चली जाती है। अब ऐसा काम कब हो?

व्यवहार को ग्रहण करना या निमित्त को ग्रहण करना- ऐसा जीव का स्वभाव ही नहीं है। निर्मल पर्याय को ग्रहण करना, वह उसका स्वभाव है। अहा! यह वीतराग का धर्म कोई अलौकिक है।

'पूरन विग्यानघन सो है विवहारमाहीं'- भगवान आत्मा विज्ञानघन है। जैसे पाँच मन की बर्फ की शिला हो, वैसे ही यह आत्मा पूर्ण ज्ञान और शान्ति की मोटी शिला है। देह के अन्दर, किन्तु देह के रजकणों से भिन्न ज्ञानानन्द की शिला है। व्यवहार से वह पाँच द्रव्यों और नवतत्त्वों में रहता है, परन्तु वह नवरूप नहीं होता। वर्तमान पर्याय में काम-क्रोधादि थे, वे मिटकर संवर-निर्जरा होती है, अतः आत्मा नवतत्त्वरूप पर्याय में होता है; परन्तु वास्तव में वस्तु-द्रव्य है, वह नवरूप नहीं हुई।

ये बनारसीदासजी रंगीले-क्षृंगारी कवि थे; परन्तु सत्समागम हुआ, वहाँ रुचि का परिवर्तन हो गया, सारी दृष्टि फिर गई। अरे! हम तो आत्मा हैं।

अतीन्द्रिय आनन्द के घन हैं, हमारा परिणमन तो शुद्ध ही होगा न! हम विज्ञानघन हैं, फिर भी पर्याय में नवतत्त्वरूप परिणमन होता है। व्यवहार से जीव पाँच द्रव्यों में रहता है- ऐसा भी कहा जाता है। जिनागम में अर्थात् प्रवचनसार में छह द्रव्य कहे हैं, परन्तु यहाँ काल को गौण करके पंचास्तिकायों को ही द्रव्य कहे हैं।

'पंच दर्व नव तत्त्व न्यारै जीव न्यारौ लखै'- आकाश, धर्म, अधर्म, पुद्गल और अपने सिवाय सर्व जीवों से यह जीव भिन्न है। यह आत्मा अनंत सिद्धों और देव-शास्त्र-गुरु से भी भिन्न है। अरे! संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी द्रव्य से भिन्न है। वस्तु एकरूप ध्रुव अनादि-अनन्त सत् चित् है, वह कोई नवरूप नहीं हुई। आत्मा व्यवहार से नवतत्त्वरूप होता है, परन्तु निश्चय से नवपर्यायरूप नहीं होता। आत्मा नव से भिन्न है। 'लखै' का अर्थ यहाँ 'श्रद्धे' - ऐसा लेना। जो आत्मा को पाँच द्रव्यों और नवतत्त्वों से भिन्न श्रद्धता है- मानता है- अनुभवता है वह सम्यग्दर्शन है।

कलश टीका में कलश टीकाकार राजमल्लजी ने इस कलश के अर्थ में नवतत्त्वरूप आत्मा के अनुभव को मिथ्यात्व कहा है। उसमें संवर-निर्जरा अनादि के जो अशुद्ध हैं। उनकी बात ली है, शुद्ध संवर-निर्जरा की बात नहीं।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा आकाशादि पाँचों द्रव्यों से भिन्न है। अन्य के अस्तित्व से- अन्य के होनेपने से जीव का अस्तित्व नहीं है। पाँच द्रव्यों और नवतत्त्वों से आत्मा का अस्तित्व-होनापना अत्यन्त निराला है। अतः आत्मा को इन सबसे निराला देखना-श्रद्धा करना, वह सम्यग्दर्शन है। 'सम्यकदरस यहै और न गहतु है'। छहढाला में पण्डित दौलतरामजी ने भी लिखा है, 'पर द्रव्यनतें भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है।'

'सम्यकदरस जोइ आतम सरूप सोई'- सम्यग्दर्शन में आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द है ऐसा देखना, वह आत्मा का स्वभाव ही है। राग और दया, दान के विकल्प, वे आत्मा का स्वरूप नहीं और आत्मा का स्वरूप उनसे दिखता

नहीं। सम्यग्दर्शन में ही आत्मा जैसा है, वैसा श्रद्धा में आता है।

'मेरे घट प्रकटे बनारसि कहतु है'– पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं– ऐसा आत्मा का स्वरूप मुझे प्रकट होओ अर्थात् मेरे ज्ञान की पूर्णदशा प्राप्त होओ –ऐसा कहकर सिद्धपद को आमन्त्रण देते हैं। क्रमशः

---

पृष्ठ 7 का शेष

—इसप्रकार श्रीगुरु ने अत्यंत करुणा से भेदज्ञान कराया, तदनुसार ज्ञान की उज्ज्वलता करके शिष्य परम प्रसन्न हुआ है, आनंदित हुआ है। चैतन्यतत्त्व ही ऐसा है कि जिसे लक्ष में लेकर अनुभव करने से महा आनंद होता है।

धन्य है गुरु को! जिन्होंने परम अनुग्रह से भेदज्ञान कराके शिष्य को स्वतत्त्व में सावधान करके आनंदित किया है।●

*आत्मधर्म हिन्दी, वर्ष 27, अंक 11-12*

---

## षट्खण्डागम ग्रन्थ की प्रथम पुस्तक की वाचना सम्पन्न

***तीर्थधाम मङ्गलायतन*** में प्रथम बार, प्रथम श्रुत स्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ था। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई। इस उपलक्ष्य में प्रभातफेरी एवं षट्खण्डागम ग्रन्थजी को विराजमान किया गया।

**द्वितीय पुस्तक की वाचना 01 अप्रेल 2021 से प्रारम्भ**

**विद्वत् समागम** – विदुषी बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सुधीर शास्त्री, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सचिन्द्र शास्त्री का लाभ प्राप्त होता है।

दोपहर – 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)

सायंकाल 07.30 से 09.00 बजे तक मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,

Password - 1008 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

# मोक्षार्थी जीव स्व-कार्य को किस प्रकार साधता है ?

**[ नियमसार, गाथा 155 से 158 पर**
**पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी का प्रवचनांश ]**

हे भव्य! सहज तत्त्व की आराधना में तू अछिन्न रहना... आनंद से उसकी आराधना करना। जगत के भय से तू अपनी आराधना से चलायमान न होना। जैनशासन में कहे गये इस परम गंभीर चैतन्यतत्त्व का कोई विरले ही अनुभव करते हैं। इसलिये लौकिक जीवों का साथ छोड़कर तू अकेला ही अपने स्वकार्य में तत्पर रहना और अंतर में अपने ज्ञाननिधान को भोगना। जगत तेरी निंदा या प्रशंसा करे—उसके सन्मुख देखने को न खड़े रहना, बल्कि परम आनंदभाव से उल्लासमान अपने स्वतत्त्व में सन्मुख होकर उसकी साधना करना। आत्मा के साधने में लौकिक भय नहीं रखना।

हे भव्य! शुद्धनिश्चयस्वरूप परमात्मतत्त्व का ध्यान महा आनंदरूप है, और ऐसे परमात्मध्यान को ही जिनभगवान ने मोक्ष के लिये आवश्यक क्रिया कहा है, मोक्ष के लिये ऐसे उत्तम स्वकार्य को निरंतर साधना। —किसप्रकार साधना ? सो कहते हैं।

सर्वप्रथम स्वभाव और परभाव की भिन्नता के अभ्यासरूप भेदज्ञान द्वारा मोक्ष के कारणरूप स्वभाव-क्रिया को, सत्-क्रिया को स्पष्टरूप से जानना। राग से पृथक् ऐसी शुद्धभावरूप क्रिया ही मोक्ष के कारणरूप क्रिया है, अर्थात् परमात्मतत्त्व में परिणति की एकाग्रता मोक्ष की सत्-क्रिया है। अन्य कोई शुभाशुभ क्रिया मोक्ष का कारण नहीं;—ऐसा भलीभाँति जानकर मुमुक्षु को अपने एकत्व में रहकर स्वकार्य को साधना चाहिए। चौथे गुणस्थान से ऐसी साधना प्रारंभ होती है।

आनंदधाम ऐसे स्वतत्त्व की साधना में लीन मुनियों के तो लोगों के संग

की आसक्ति छूट गई है, और चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि को भी सर्व बाह्य संग की प्रतीति छूटकर अपने स्वतत्त्व का ही प्रेम है, तथा उसी को साधने में वह तत्पर है।

अहा, मेरा आत्मा ऐसा महानतत्त्व है कि जिसमें से मात्र शांति ही प्रगट होती है। उसमें एकाग्र होकर मैं एकाकी अपनी शांति का वेदन करता हूँ, उसमें जगत के किसी अन्य संग का मुझे क्या काम ? मेरी शांति कहीं पर के संग से नहीं आती, परसंग रहित, अकेले स्व में रहकर मैं अपनी शांति का वेदन करता हूँ। मेरी पर्याय अंतर की ओर उन्मुख होकर अपने शुद्धतत्त्व का ही संग करती है—एकता करती है; अपने द्रव्य और पर्याय के भेद में मैं नहीं रुकता। पर के संगरहित और द्वैत के विकल्परहित, एकत्व में लीन एकाकी होकर मैं अपने मोक्षसुख को साधता हूँ—यही मेरा कार्य है।

इसप्रकार स्वतत्त्व को और उसमें एकाग्र-पर्यायरूप सत्क्रिया को जानकर सर्वसंग से पार ऐसे एकत्व चैतन्य के लक्ष से एकाकी होकर मौनरूप से स्वकार्य को साधना। कोई अज्ञानी निंदा करे—ईर्षा करे, तथापि अपनी साधना में भंग करना नहीं, और अपनी अंतर्मुख परिणति को छिन्न-भिन्न न होने देना तथा लोकसंबंधी संकल्प-विकल्पों को एक ओर रखकर अपना कार्य अपने में साधना। अरे, मेरे अलौकिक अचिंत्य चैतन्यतत्त्व की अनुभूति के समक्ष यह लोक तो तृण-समान प्रतीत होता है! संसारी जीव ऐसे चैतन्य को नहीं देखते, फिर उनके वचन का क्या मूल्य ? चैतन्य का कार्य क्या, चैतन्य की वास्तविक क्रिया क्या ? उसमें कैसी अकषाय शांति है ? उसकी जिसे खबर नहीं, ऐसे मूर्ख जीव कदाचित् उनकी निंदा करें, तथापि धर्मी मुमुक्षु जीव आत्मा को साधनेरूप निजकार्य को नहीं छोड़ते। अहा, मेरी पर्याय अंतरतत्त्व में प्रवेश करके मोक्षसुख की साधना कर ही रही है, ऐसा महान कार्य मेरी पर्याय में सध रहा हो, वहाँ जगत की परवाह क्या ? जगत की स्पृहा छोड़कर आत्मा के एकत्व में आया, तब तो ऐसे

सम्यक्त्वादिरूप महान कार्य हुआ है। अब धर्मी जीव लोकभय से उसमें भंग नहीं पड़ने देता।

भाई, मोक्ष की क्रिया तो पर्याय है, और वह पर्याय अंतर के शुद्धतत्त्व के आश्रित है। मोक्ष की सच्ची क्रिया तो शुद्ध पर्याय है और उस पर्यायरूप आत्मा स्वयं होता है, उसमें दूसरे का संग नहीं है, वचनविकल्प नहीं है, मात्र अपने परमात्मतत्त्व का ही ध्यान है। ऐसी सत्य-क्रिया को जानकर हे मुमुक्षु! तू संसार से निरपेक्ष, अकेला ही उसे निरंतर साधना। जगत उसे जाने या न जाने, प्रशंसा करे या निंदा, उसे देखने को मत खड़ा रहना, परंतु परम आनंदभाव से उल्लासमान अपने तत्त्व की ओर उन्मुख होकर उसी की साधना करना। आत्मा को साधने में लोकभय नहीं रखना।

इस जगत में शाश्वत परम सुख प्रदान करनेवाला अपना परम चैतन्यतत्त्व ही है, इसके अतिरिक्त जितने प्रशस्त-अप्रशस्त विकल्प हैं, वे सब संसार-दु:ख के ही मूल हैं। बाह्य भाव या लोकसंग से स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। अनेक प्रकार के विचित्र जीव इस संसार में हैं, उनके साथ वचन-विवाद करना ठीक नहीं है। महान भाग्योदय से जिनमार्ग को प्राप्त करके, उसमें कहे गये परमात्मतत्त्व को स्वयं अकेले-अकेले अपने अंतर में साध लेने जैसा है। जिस तत्त्व में प्रवेश करने से शांति का वेदन हो, ऐसा तो एक निजतत्त्व ही है—जो सदैव महा आनंद प्रदान करनेवाला है। हे जीव! ऐसे तत्त्व की गहरायी में उतरकर तू उसे साध... उसी का अनुभव कर। लोक के किसी कल्पनाजाल का उसमें प्रवेश नहीं है।

द्रव्य-गुण-पर्यायरूप प्रत्येक वस्तु भगवान सर्वज्ञदेव के ही शासन में कही गई हैं। अन्य कोई यथार्थ वस्तुस्वरूप को नहीं जान सके। इसलिये हे भाई! महा भाग्य से सर्वज्ञ के मार्ग को प्राप्त करके तू अपने स्वाधीन द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर, जगत से निस्पृह होकर एकाकी आत्म-आनंद को साधना। दु:खपर्याय छोड़कर सुखपर्यायरूप होना है, तो सुखरूप कौन

होगा ? तू ही अपने द्रव्य-गुण के सामर्थ्य से सुखपर्यायरूप होगा, द्रव्य-गुणरूप त्रिकाल रहकर आत्मा स्वयं अंतरोन्मुखता द्वारा सुख-पर्यायरूप परिणमन करता है। द्रव्य-गुण-पर्याय को न माने तो ऐसा कार्य नहीं हो सकता। जगत के जीव तो ऐसे तत्त्व को नहीं जानते, ज्ञानी की अंतरदशा को नहीं पहचानते, इसलिये वे तो अज्ञानवश सत् की निंदा करते हैं; आरोप लगाते हैं, ईर्षा करते हैं, लेकिन साधक जीव उसकी परवाह नहीं करता; वह तो जानता है कि अरे, सुख के लिये हमें जगत से क्या प्रयोजन है ? अपने सुख के लिये अपने अंतर के द्रव्य-गुणस्वभाव के साथ ही मेरा प्रयोजन है। इसलिये निजस्वभाव के आश्रय से मौनरूप मैं अपने कार्य को साध ही रहा हूँ अर्थात् अपने एकत्व के सुख का मुझे अपने में अनुभव हो ही रहा है। मेरा निजतत्त्व स्वयं ही शाश्वत सुखदायक है, उसी का मैं आलंबन कर रहा हूँ, फिर अन्य कोई निंदा करता है तो करे, उसका मुझे भय नहीं है, प्रशंसा करे तो उसकी स्पृहा नहीं है।

अहा, देखो तो सही, जैनशासन में ऐसा निरपेक्ष, मात्र आत्मा का ही अवलंबन लेने वाला मोक्षमार्ग है। ऐसे जैनशासन को प्राप्त करके स्वयं अपने कार्य को साध लेना चाहिये, अन्य जीवों के साथ वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिये। जगत तो विचित्र जीवों का समूह है, उसमें सभी जीव ऐसे गंभीर चैतन्यतत्त्व को समझ लें—यह तो असंभव है; कोई विरले जीव ही चैतन्यतत्त्व का अनुभव करते हैं, इसलिये तू लौकिक जीवों का संग छोड़कर अंतर में अपने ज्ञान-निधान का उपभोग करना। अपने सहज तत्त्व की आराधना में तू अछिन्न रहना... आनंद से उसका आराधन करना। जगत के भय से तू अपनी आराधना से चलित नहीं होना। हे मुमुक्षु! निर्विकल्प होकर अपनी परिणति को परम आनंदमय अपने सहज तत्त्व में लगाना।

'आत्मप्रवाद' अर्थात् आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले जो शास्त्र हैं, उनमें कहे गये परमात्मस्वरूप को जानकर जो मुमुक्षु स्वयं

आत्मज्ञानरूप परिणमित हुआ है—ऐसा परम आत्मज्ञानी जीव लोकनिंदा के भय को छोड़ देता है। लोग चाहे जो कहें, निंदा करें, तिरस्कार करें, यह सब तो संसार में चलता ही है, उसमें मुझे क्या? मैं तो अपने परमात्मतत्त्व के शाश्वत सुख को अपने में साध रहा हूँ। ऐसे परमात्मतत्त्व को न जाननेवाले पशु समान जीव चाहे कुछ बोलें, उनकी बोली को मूल्य क्या? मेरे चैतन्यसुख के समक्ष दुनियाँ तो तृणतुल्य लगती है। इसप्रकार जिसने अंतर में परम चैतन्यतत्त्व के रस का आस्वादन किया है, उस मुमुक्षु को बाह्यविकल्प या लौकिक संग रुचिकर नहीं लगता; उसकी परिणति अपने अंतर-आत्मतत्त्व के सिवा अन्यत्र कहीं एकाग्र नहीं होती; अन्यत्र कहीं उसे सुख प्रतीत नहीं होता। अरे, मेरे चैतन्यसुख को जगत की अपेक्षा ही नहीं है, फिर उसका भय कैसा? इसप्रकार निर्भयरूप से, जगत से निरपेक्ष होकर धर्मी अपने परमतत्त्व को साधता है। अरे, संसार को प्रसन्न रखने के लिये मैं कुछ नहीं करता, मैं तो अपने आत्मा की प्रसन्नता के लिये अर्थात् आत्मानंद का वेदन करने के लिये, लोकसंग छोड़कर एकाकी चैतन्य के एकत्व को साध रहा हूँ।

*आत्मधर्म हिन्दी, वर्ष 27, अंक 9*

## क्षमारूपी सुदृढ ढाल

दुष्ट जीवों द्वारा चाहे जितना उपद्रव हो, परंतु जिन्हें कभी क्रोध उत्पन्न नहीं होता, ऐसे क्षमावन्त धर्मात्माओं का वे दुष्ट जीव कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। क्षमारूपी उत्तम ढाल के सामने चाहे जैसे उपद्रव का प्रहार व्यर्थ जाता है। इसलिये आत्मशुद्धि की सिद्धि के लिये सदा उत्तम क्षमा धारण करके, शत्रु पर भी क्रोध नहीं करना।—यह उत्तम पुरुषों का कर्तव्य है।

आचार्यदेव परिचय शृंखला

## भगवान आचार्यदेव
# श्री वादिराजसूरि

'एकीभावस्तोत्र' अपरनाम 'कल्याण कल्पद्रुम' से आप जैन समाज में जन–जन तक प्रसिद्ध हैं। आपके स्तोत्र का नाम 'कल्याण कल्पद्रुम' होने पर भी भक्ताम्बर, स्वयंभू आदि स्तोत्रों की भाँति, स्तोत्र के 'आदि शब्द' से इस स्तोत्र का नाम 'एकीभाव स्तोत्र' जगत में प्रचलित है। आचार्य श्री जाने–माने दार्शनिक, चिन्तक व महाकवियों में अपना एक स्थान रखते हैं। आप उच्च कोटिके तार्किक थे। आपकी तुलना जैन कवियों में आचार्य सोमदेवसूरि से व संस्कृत के कवि नैषधकार तथा श्री हर्ष के साथ की जाती है। आपके लिए एक उक्ति प्रवर्तती है, कि 'आपकी बुद्धिरूपी गाय ने जीवनपर्यन्त शुष्कतर्करूपी घास खाकर काव्य–दुग्धसे सहृदयजनों को तृप्त किया है'।

आप द्रविड़ संघ में नन्दिसंघ के आचार्य थे। आप शक्तिशाली वक्ता, चिन्तक, षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति व जगतेकमल्लवादी आदि अनेक उपाधियों से भूषित थ। आपसे अन्य वैयाकरणी, तार्किक व भव्यसहायक हीन ही हीन हैं। आप भगवान आचार्य अकलंकदेव के तुल्य थे।

आपकी प्रशंसा के कई शिलालेख दक्षिण में उपलब्ध हैं। उसमें एक स्थान पर लिखा है कि 'तीन लोक का दीपक–प्रकाशन दो ही उदय प्राप्त हुआ है– एक जिनराज से और एक वादिराज से।'

आप आचार्य श्रीपाल के प्रतिष्य, आचार्य मतिसागर के शिष्य, अनन्तवीर्य व यशपाल मुनि के गुरूभाई थे। आपका शुभ नाम कनकसेन था व दीक्षानाम वर्द्धमान मुनिश्वर था व 'वादिराज' उपाधिकृत नाम हो, ऐसा प्रतीत होता है। आपके पादकमल में परवादिमल्ल नाम जिनालय का निर्माण हुआ था। आप चालुक्य नरेश जयसिंह (द्वितीय) द्वारा सम्मानित थे। आप उनसे पूजित व उनके राज्य के वादि थे।

आपके बारे में एक कथा प्रचलित है, कि आपको कुष्ठ रोग हो गया

था। एक बार इस बारे में राज्यसभा में चर्चा हुई। तब आपके अनन्य भक्त सेठ ने अपने गुरू के अपवाद के भय से गुरू के प्रति अनन्य श्रद्धा के वशीभूत हो कह दिया, कि 'मेरे गुरू कुष्टरोगी नहीं हैं'। सेठजी को राज्यसभा में उनके गुरू को कुष्टरोग होने के वे शब्द बहुत अखरे और सरासर झूठ जान पड़े; क्योंकि उन्हें गुरू वादिराज कभी कुष्टरोगी के रूप में लक्ष्यगत ही नहीं हुए थे। उन्होंने तो मात्र भक्त बनकर जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी'। इसलिए राजा के पूछनेपर सेठजी ने स्पष्ट कह दिया कि 'मेरे गुरू कुष्टरोगी नहीं हैं'। इस पर वाद–विवाद हुआ और अन्त में राजा ने स्वयं ही परीक्षा करने का निश्चय किया। अतः भक्त–सेठ घबराया हुआ, कि 'धर्म के प्रताप से सब ठीक होगा, चिन्ता मत करो'। उस समय आपने एकीभास्तोत्र की रचना करते हुए, भगवान की बहुत ही भाव से स्तुति की, एसे शुद्धिपूर्वक शुभभाव से व पूर्व पुण्य से आपका कुष्टरोग दूर हो गया । कुष्टरोग के संबंध में राजा को चुगली खाने वाले को, राजा की ओर से दंड ना हो, अतः पाँव में कुष्ट रहने दिया। राजा ने हकीकत जानी,तब राजा सहित नगर के सर्व लोगों ने जिनधर्म अंगीकार कर लिया।

आपकी 1. पार्श्वनाथ चरित, 2. यशोधर चरित, 3. एकीभावस्तोत्र 4. न्यायविनिश्चविवरण, 5. प्रमाण निर्णय रचनाएँ हैं।

आप इ. स. 1010–1065 के आचार्य भगवंत थे।

'एकीभावस्तोत्र' के रचयिता आचार्य वादिराजसूरि भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

## भगवान आचार्यदेव
# श्री रामसेनाचार्य

रामसेन नामक जिनधर्म में कई भट्टारक व विद्वान हुए हैं पर उसमें से तत्त्वानुशासन रचयिता श्री रामसेनाचार्य अपनी विशुद्धि की दीप्ति को प्रद्योत करने वाले थे।

आपने अपनी गुरू परम्परा बताते स्वयम् ने लिखा है जिससे ज्ञात

होता है कि 'वीरचन्द्र, शुभदेव, महेन्द्रदेव और विजयगुरू ये आपके विद्यागुरू थे। पुण्यमूर्ति एवं उच्चकोटि के चरित्रधारी कीर्तिमान नागसेन आपके दीक्षागुरू थे। श्री रामसेनाचार्य के विद्यागुरू महेन्द्रदेव वे नेमिदेव के शिष्य और श्री सोमदेवजी के शिष्य और श्री सोमदेवजी के बडे गुरूभाई थे। आपके चतुर्थ शास्त्रगुरू विजयदेव थे।

आप सेनसंघी आचार्य थे, ऐसा सेनसंघ की पट्टावलियों से ज्ञात होता है।

आपने एक मात्र 'तत्त्वानुशासन'ग्रंथ रचा है।

आपका समय ई. स. की 11वीं शाताब्दी उत्तरार्थ पश्चात् का प्रतीत होता है।

श्री रामसेनाचार्य भगवंत को कोटि कोटि वंदन।

## भगवान आचार्यदेव
# श्री पद्मनंदि (आचार्य)

आप 'जम्बूद्वीपण्णत्ति' के रचयिता आचार्य पद्मनंदिदेव के पश्चात् हुए हैं, अतः अलग ही हैं। आपके बारे में विशेष कोई जानकारी नहीं मिलती है, पर आप अपने ' पद्मनंदि पंचविंशतिका' ग्रन्थ से समाज में बहुत ही परिचित हैं। आपके ग्रंथ को श्रीमद् राजचंद्रजी ने 'वनशास्त्र' कहकर, इस ग्रंथ की भूरि प्रशंसा की थी। पूज्य सद्गुरूदेवश्री कानजीस्वामी ने आपके इस ग्रंथ को आत्मसात् ही नहीं पर उसके कई अधिकारों पर यथावसर सभा में प्रवचन भी दिये थे।

आपके दीक्षागुरू का नाम आचार्य वीरनन्दि था, पर वे 'जम्बद्वीप पण्णत्ति' के रचयिता आचार्य पद्मनन्दि के दादगुरू वीरनन्दि आचार्य से भिन्न थे।

आपके ग्रन्थ के भाषा पर से होता है, कि आप प्राकृत व संस्कृत दोनों के ज्ञाता थे। आपके ग्रन्थ से यह भी ज्ञात होता है, कि आपको पूर्वाचार्य, आचार्य अमृतचंद्रदेव, आचार्य अमितगति, आचार्य सोमदेव,आचार्य प्रभाचन्द्र, आचार्य गुणभद्रजी आदि अनेक आचार्यों के

ग्रंथों का ज्ञान था। इतना ही नहीं, उनके कई मर्म भेदी कथनों को आपने अपने ग्रंथ अवयव बना लिये हैं।

इतना ही नहीं आपका ग्रंथ इतना सुन्दर व अनूठा बना है, कि आपके पश्चात्वर्ती आचार्यों ने आप के ग्रंथ के कई कथन अपने ग्रंथ रचना में अपनाये हैं।

यद्यपि इस ग्रंथ में 26 अधिकार होने पर भी उसका नाम 'पद्मनंदि पंचविंशतिका' ही रखा है।

आपने अपने में अनूठा एक मात्र 'पद्मनंदीपंचविंशतिका ग्रंथ' रचा हैं 'चरणसार' (प्राकृत) भी आपकी रचना मानी जाती है।

आप ईसा की 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के आचार्य हैं।

'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रंथ के रचयिता आचार्य पद्मनंदि (द्वितीय) कोटि कोटि वंदन।

क्रमशः

## गौकसी बने नरकवासी

अभी तो जहाँ-तहाँ पूछो तो (कहते हैं), बस! ईश्वर की मेहरबानी, ईश्वरकर्ता, ईश्वर की इच्छा अनुसार होगा - ऐसी मान्यता। कत्लखाना करते हैं। कत्लखाना करने की ईश्वर की इच्छा होगी? 'अमेरिका' में तो डेढ़ मील में एक बड़ा कारखाना है (गायों का)। सैकड़ों गाय एकसाथ रखते हैं। ऊपर से हथियार गिरता है (और) गला और सिर (काट देता है)। उसका मालिक चाँदी की कुर्सी पर बैठनेवाला पैसेवाला करोड़पति, अरबोंपति (होता है)। दिखावा तो देखो! आहा...हा...! उसे जाना तो है नरक में। अरे...रे...! यह पर्दा किस प्रकार का? यहाँ चाँदी कुर्सी (पर बैठे)। चाँदी की हों! बैठता है। डेढ़ मील में कत्लखाना है। आहा...हा...!

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी, अमृत प्रवचन(भाग-२), बहिनश्री वचनामृत ९७

प्रेरक-प्रसंग

# हिंसा हार गयी

तब देश पराधीन था। अंग्रेजों के अत्याचार, अनाचार के विरुद्ध बिहार के किसान आन्दोलन कर रहे थे। इस आन्दोलन का नेतृत्व कर रहे थे महात्मा गाँधी। आन्दोलन के सिलसिले में वे एक गाँव पहुँचे तो उन्होंने देखा कि ढोल बजाती, नाचती-कूदती एक भीड़ आगे बढ़ रही है। इस भीड़ के पीछे था — एक डरा-सहमा बकरा। भीड़ ने बकरे के गले में फूलमालायें डाल रखी थीं।

गाँधीजी ने भीड़ को रोका—पूछने पर पता चला कि इस बकरे को देवी की बलि के लिये ले जाया जा रहा है। गाँधीजी दया और करुणा से अभिभूत हो उठे। उन्होंने बकरे को छोड़ देने को कहा, पर रूढ़ि पर आबद्ध भीड़ ने उनकी नहीं सुनी। आत्म-बल के धनी गाँधीजी भी अपना काम छोड़ उस भीड़ के साथ हो लिये और मूर्ति के सामने खड़े होकर भीड़ को सम्बोधित करने लगे—'बकरे की जगह देवी को मानव-मांस अधिक अच्छा लगेगा। मैं देवी के सामने बैठता हूँ, आप मेरी बलि चढ़ा दो।'

गाँधीजी का आत्म-बल रंग लाया। भीड़ के हौसले पस्त हो गये। भीड़ ने बकरे को स्वतन्त्र कर दिया और गाँधीजी से प्रभावित हो, उन लोगों ने भविष्य में किसी भी देवी-देवता के सामने पशु-बलि न देने का संकल्प लिया। **हिंसा हार गयी, अहिंसा की विजय हुई।**

**शिक्षा - करुणा व दया के पालन से ही अहिंसा पल सकती है। दयावान जीव अपने प्राणों का उत्सर्ग करके भी दूसरों की रक्षा करने के लिए तत्पर रहते हैं। ऐसे जीवों का आचरण सभी को सहज ही सीख दे देता है।**

**साभार : बोध कथायें**

# जिस प्रकार–उसी प्रकार में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– घर में लगे तालों को चाबी से खोला जाता है।

उसी प्रकार– मिथ्यात्व रूपी ताले को सम्यक्त्व रूपी चाबी से खोला जाता है।

जिस प्रकार– अध्यापक के घर में जन्में बच्चे को अध्यापक कहना मूढ़ता है, डाक्टर के घर में जन्में बालक को डाक्टर कहना मूढ़ता है, जज के बेटे को जज कहना मूढ़ता है। अपने पुरुषार्थ पूर्वक वैसा बने तो ठीक है।

उसी प्रकार– जैन घर में जन्में व्यक्तियों को सम्यग्दृष्टि कहना मूढ़ता है। अपने पुरुषार्थपूर्वक सम्यग्दर्शन प्राप्त करे तो ठीक है।

जिस प्रकार– तीव्र बुखार और मंद बुखार दोनो शरीर के लिए हानिकारक है, मन्द बुखार अगर अधिक दिन ठहर जाये तो टी.बी. हो जाता है। अतः मंद बुखार को अच्छा कहना मूढ़ता है।

उसी प्रकार– तीव्र कषाय जो पाप रूप है और मंद कषाय जो पुण्य रूप है दोनो ही आत्मा के हानिकारक है। पुण्य को ठीक मानना कम बुखार को ठीक मानने जैसा है अर्थात आत्मा को दुर्गति में डालना है।

जैसे– सिद्ध भगवान का आत्मा द्रव्य–गुणों से त्रिकाली शुद्ध है और पर्याय में वर्तमान में शुद्ध हुआ है।?

वैसे– मेरा आत्मा द्रव्य–गुणों से त्रिकाली शुद्ध है पुरूषार्थ पूर्वक पर्याय में शुद्ध होना सिद्ध समान सदा पद मेरे'

जिस प्रकार– लोहे और सोने की बेड़ी बांध कर रोकने की अपेक्षा समान है, दोनों दुख को उपजाने वाली है।

उसी प्रकार– सम्यक्त्व रहित पाप और पुण्य भाव दोनो कर्म बंध के कारण है, जीव को चार गतियों में भटकाने वाले है। दोनों भावों से चार घातिया कर्मो का बंध होता है।

जिस प्रकार– बड़ के बीज में से बड़ वृक्ष प्रगट होता है, वह बीज पूरे वृक्ष में फैल रहता है, टहना– टहनी, पत्ते आदि सब बीज में से आते है।

उसी प्रकार– आत्मरूपी बीज में से ही अनन्त दर्शन, अनन्द ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द आदि सभी गुण– पर्यायें प्रगट होती है, भव्य तू ऐसा निश्चय से जान। **क्रमशः**

**संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की**

## समाचार-दर्शन

### भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का 19वाँ साक्षात्कार शिविर सम्पन्न

**तीर्थधाम मङ्गलायतन :** यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का नवीन प्रवेशार्थियों के प्रवेश हेतु 19वाँ साक्षात्कार शिविर दिनांक 01 अप्रेल 2021 से 04 अप्रेल 2021 तक सम्पन्न हुआ। जिसमें करेली से पधारे श्री अजय जैन की अध्यक्षता में डॉ. योगेश जैन, अलीगंज; पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, मङ्गलायतन आदि महानुभावों की उपस्थिति में कार्यक्रम सम्पन्न हुए। मङ्गलार्थी अनुभव जैन मौ, शुद्धात्म जैन भीलवाड़ा, अनितेश करेली, संयम करेली, आगम करेली आदि मङ्गलार्थी द्वारा बाल कक्षाओं एवं पण्डित सचिन जैन द्वारा स्वाध्याय का लाभ मनुष्य भव की दुर्लभता, वर्तमान में जैनत्व की प्रभावना आदि विषयों पर लाभ प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम के प्रथम दिन अध्यक्ष श्री अजय जैन करेली, श्री विकास जैन टीकमगढ़, पण्डित कमलेश जैन मौ आदि महानुभाव उद्घाटन सभा में मंचासीन थे। शिविर की उपयोगिता-साक्षात्कार शिविर की प्रक्रिया सम्बन्धी उद्बोधन पण्डित अशोक लुहाड़िया एवं अन्य सूचनायें ऋषभ जैन द्वारा दी गयीं। इस प्रकार औपचारिक उद्घाटन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रवेशार्थी शिविर में कुल 45 प्रवेश फार्म प्राप्त हुए जिसमें उपस्थित 31 छात्र उपस्थित हुए। इन छात्रों में से 11 सुयोग्य मङ्गलार्थी छात्रों का चयन किया गया।

इसी अवसर पर भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में संचालित धार्मिक परीक्षा का वार्षिक परिणाम प्राचार्य डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा सुनाया गया।

अन्तिम दिन 04 अप्रेल को श्री ऋषभ जैन, पण्डित सुधीरजी शास्त्री आदि के द्वारा शिविर का समापन सानन्द हुआ।

### राष्ट्रीय युवा सम्मेलन में मंगलार्थी छात्र का वक्तव्य

**दिल्ली :** अहिंसा प्रभावना परिवार दिल्ली द्वारा आयोजित राष्ट्रीय युवा सम्मेलन में मंगलार्थी छात्र वरांग जैन, कक्षा 12 एवं मंगलायतन के विद्वान् श्री सचिन जैन की पुत्री कु. मुक्ति जैन द्वारा 'भारत के विकास में जैन समाज का योगदान' इस विषय पर बहुत सारगर्भित वक्तव्य दिया गया। साथ ही डॉ. सचिन्द्र जैन शास्त्री, प्राचार्य भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन द्वारा भी कार्यक्रम की अनुमोदनापूर्वक संक्षिप्त उद्बोधन दिया गया और भी मंगलायतन विश्वविद्यालय से मयंक जैन, राष्ट्रीय गौरव इन्दु जैन दिल्ली, मनोजजी प्रधान भोपाल, राकेशजी जैन दिल्ली, अनुज जैन आगरा, राजीव

जैन दिल्ली, अनूप जैन मंडल अध्यक्ष भाजपा आदि। वक्ताओं द्वारा भी युवाओं के विकास में जैन समाज की भूमिका पर प्रकाश डाला गया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम का सफल आयोजन ऑनलाईन श्री अंकित जैन मुरैना द्वारा किया गया।

## वैराग्य समाचार

**भीलवाड़ा** – श्री महाचन्दजी सेठी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप श्री ज्ञानचन्दजी एवं प्रकाशचन्दजी के पिताजी थे। आप मङ्गलार्थी विवेक जैन के दादाजी थे। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था।

**दिल्ली** – श्री विमलचन्दजी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप श्री रजनीश और श्री नीरज के पिताजी थे। आप मुमुक्षु जगत के आधारस्तम्भ थे। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था।

**मुम्बई** – श्री प्रवीणचन्दजी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आप कोल्हापुर, हेलरे, सर्वोदय स्वाध्याय ट्रस्ट के प्रमुख आधारस्तम्भ थे। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था।

**कानपुर :** श्रीमती स्नेहलता जैन धर्मपत्नी श्री जैनबहादुर जैन कानपुर का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था।

**जबलपुर :** श्रीमती राजकुमारी जैन धर्मपत्नी श्री बाबूलाल जैन, रूपाली परिवार। आपका शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। आपका तीर्थधाम मङ्गलायतन से विशेष लगाव था।

**फुटेरा :** श्री अमित शास्त्री की माताजी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है।

**छिन्दवाड़ा :** श्री प्रखर शास्त्री के पिताजी का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है।

**उभेगाँव :** श्री अक्षय शास्त्री अल्पवय में ही देहपरिवर्तन हो गया है।

**मुजफ्फरनगर** – श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी श्री केशचन्दजी जैन का शान्तपरिणाम से देहपरिवर्तन हो गया है। पंडित कैलाशचन्दजी बुलन्दशहर की ज्येष्ठ पुत्री एवं श्री पवन जैन की बड़ी बहिन थीं।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

## 'मोक्षमार्गप्रकाशक' ग्रन्थ सेट

# संक्षिप्त परिचय

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी के त्रिशताब्दी जन्मजयन्ती के पावन अवसर पर, उनकी अनुपम कृति **'मोक्षमार्गप्रकाशक'**, उसी के आधार पर **'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी'**, **'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव'** में समागत सारभूत दृष्टान्तों एवं सिद्धान्तों पर आधारित कृति प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। नवीन पाठकों को मूल ग्रन्थ के अध्ययन की प्रेरणा जागृत हो, इस उपलक्ष्य में सभी स्वाध्याय भवनों, मुमुक्षु संस्थाओं एवं प्रवचनकार विद्वानों को नि:शुल्क सप्रेम भेंट स्वरूप प्रदान किया जा रहा है।

**मोक्षमार्गप्रकाशक** – तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा द्वितीय बार आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुन: मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।

**मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी** – प्रस्तुत प्रश्नोत्तरमाला में प्रत्येक अधिकार के आधार पर हैडिंग के अनुसार प्रश्नोत्तर का विभाजन किया गया है। जहाँ-जहाँ विषयवस्तु की दृष्टि से गरिष्ठता लगी, वहाँ उन विषयों को विशेष स्पष्ट किया गया है।

**मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्त वैभव** – जिनागम में गहन सिद्धान्तों को सहज हृदयग्राह्य बनाने के पावन उद्देश्य से, सुगम दृष्टान्तों की परम्परा रही है। इन्हीं दृष्टान्त-सिद्धान्त के माध्यम से पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने जनसामान्य को जिनागम के गूढ़ सिद्धान्त सरल रीति से समझाये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्तपूर्वक जिनागम के आधारभूत सिद्धान्तों को चित्रित करके कृति को रोचक बनाने का प्रयास किया गया है।

## 'मोक्षमार्गप्रकाशक', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक प्रश्नोत्तरी', 'श्री मोक्षमार्गप्रकाशक दृष्टान्तवैभव' का सेट

## मँगाने का फार्म

नाम.....

.....

पता .....

.....

..... पिन कोड .....

संस्था / मन्दिर का नाम .....

.....

संस्था / मन्दिर के प्रमुख का नाम .....

.....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

आप, हमारे ग्रन्थमाला के सम्माननीय सदस्य हैं / नहीं .....

प्रतियों की संख्या .....

नोट - ग्रन्थ की उपलब्धता के अनुसार ही आपको भेंट किए जाएँगे। आप अपना फार्म भरकर ईमेल कर देवें।

हस्ताक्षर

. . . . . .

**ग्रन्थ मँगाने का पता—**

**प्रकाशन विभाग,** तीर्थधाम मङ्गलायतन, अलीगढ़-आगरा राजमार्ग,
सासनी-204216 (हाथरस) उत्तरप्रदेश

सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)

Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

# भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के 19वाँ साक्षात्कार शिविर की सचित्र झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

## जङ्गल में भी मुनिराज परम सुखी

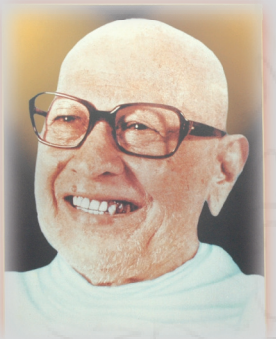

किसी को ऐसा लगे कि जङ्गल में मुनिराज को अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? **अरे भाई! जङ्गल के बीच निजानन्द में झूलते मुनिराज तो परम सुखी हैं; जगत के राग-द्वेष का शोरगुल वहाँ नहीं है।** किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिए पर के सम्बन्ध बिना आत्मा स्वयमेव अकेला आप अपने में परम सुखी है। पर के सम्बन्ध में आत्मा को सुख हो —ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय मानते हैं।

*( - गुरुदेवश्री के वचनामृत, 176, पृष्ठ 109 )*

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 ( उ.प्र. )
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com